सिद्धक्षेत्र कुण्डलगिरि

सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द शास्त्री
हस्तिनापुर, उ० प्र०

भारतवर्ष आर्यावर्त का वह भाग है जहाँ से अवसर्पिणी के चौथे काल में और उत्सर्पिणी के तीसरे काल में अनन्तानन्त मुनि मोक्ष गये हैं, जाते रहते हैं और जाते रहेंगे। इसलिये इस देश के प्रायः सभी प्रदेशों में जैन सिद्ध क्षेत्रों का पाया जाना निश्चित है। इस काल में भगवान् महाबीर स्वामी के मोक्षगमन के अनन्तर गौतम स्वामी, सुधर्माचार्य और जम्बू स्वामी मोक्ष गये हैं। ये तीनों अनुबद्ध केवली थे। त्रिलोक प्रज्ञप्ति के उल्लेख से मालूम पड़ता है कि श्रीधर नाम के एक मुनिराज श्री कुण्डलगिरि से मोक्ष गये हैं। ये अननुबद्ध केवली थे। ये पूर्वोक्त तीन केवलियों से भिन्न हैं। त्रिलोक प्रज्ञप्ति का यह उल्लेख इस प्रकार हैं—

(१) कुण्डलगिरिम्मि चरिमो केवलणाणीसु सिरिधरो सिद्धो।
चारणरिसीसु चरिमो सुपासचन्दाभिधाणो य ॥ ४–१४७९ ॥

(२) त्रिलोक प्रज्ञप्ति के इस पाठ की पुष्टि प्राकृत निर्वाण भक्ति के "णिवणकुण्डली वन्दे" पाठ से भी होती है।

इसी के अनुरूप संस्कृत निर्वाणभक्ति के निम्न श्लोक में भी कुण्डलगिरि को सिद्धक्षेत्र स्वीकार करते हुए वह गिरि कहाँ पर है, इसका भी भले प्रकार निदेश कर दिया गया है :

(३) द्रोणीमति प्रबलकुण्डलमेढ्रके च, वैभारपर्वततले वरसिद्धकूटे।
ऋष्याद्रिके च विपुलाद्रिबलाहके च, विन्ध्ये च पोदनपुरे वृषदीपके च ॥ २९ ॥

अर्थात् द्रोणीगिरि, कुण्डलगिरि, मुक्तागिरि, वैभारगिरि का तल भाग, सिद्धवरकूट, ऋषिगिरि, विपुलगिरि, वलाहकगिरि, विन्ध्य, पोदनपुर और वृषदीप में जो सिद्ध हुए, उनकी मैं वन्दना करता हूँ।

इस पाठ में द्रोणगिरि और मुक्तागिरि के मध्य में कुण्डलगिरि का नाम आया है। आचार्य पूज्यपाद का यह कथन सोद्देश्य होना चाहिये। इससे निश्चित होता है कि इन दानों गिरियों के मध्य में कहीं कुण्डलगिरि अवस्थित है। इस प्रकार उक्त तीन उल्लेखों से हम जानते हैं कि इनमें जिस कुण्डलगिरि को सिद्ध क्षेत्र स्वीकार किया गया है, वह यही कुण्डलगिरि है और श्रीधर मुनिराज यहीं से मोक्ष गये हैं।

प्रदेश का निर्णय

निर्वाण भक्ति के उक्त उल्लेख से यह तो निर्णय हो जाता है दमोह के पास का कुण्डलगिरि ही श्रीधर स्वामी का निर्वाण स्थान है। फिर भी, अन्य प्रमाणों से भी हम यह निर्णय करेंगे कि यह कुण्डलगिरि दमोह जिले में ही अवस्थित है या उसका अन्य प्रदेश में होना सम्भव है।

पहले मध्यप्रदेश में दमोह के पास के सिद्धक्षेत्र को कुण्डलपुर कहा जाता था। इसलिए कुण्डलगिरि कहाँ पर है, यह विवाद का विषय बना हुआ था। अभी तक कुण्डलपुर नाम के चार स्थान स्वीकार किये जाते रहे हैं। उनमें से प्रकृत कुण्डलपुर कहाँ पर है, उस पर यहाँ विचार किया जाता है।

(१) जहाँ भगवान् महावीर स्वामी का जन्म हुआ था, उसका नाम तो वास्तव में कुण्डल ग्राम है किन्तु लोकभाषा में इसे कुण्डलपुर कहा जाता है। कुछ आचार्यों ने भी इसे कुण्डलपुर नाम से स्वीकार किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) नालन्दा के निकट बड़ागाँव को कुण्डलपुर मानकर उसे वर्तमान में भगवान् महावीर का जन्मस्थान माना जाता है। वहाँ एक जिन मन्दिर भी बना हुआ है। साधारण जनता वन्दना की दृष्टि से वहाँ पहुँचती रहती है।

(३) एक कुण्डलपुर सतारा जिले में स्थित है। यह पूना से सतारा वाले रेलमार्ग पर किर्लोस्कर बाड़ी से ७ किमी० पर स्थित है। यहाँ स्थित पहाड़ पर दो जिन मन्दिर भी बने हुए हैं, इसलिए यह तीर्थक्षेत्र के रूप में माना जाता है।

(४) मध्यप्रदेश के दमोह जिले के अन्तर्गत ३५ किमी० दूर ईशान दिशा में जो क्षेत्र अवस्थित है, उसके पास कुण्डलपुर नाम का गाँव होने से, क्षेत्र को भी कुण्डलपुर कहा जाता रहा है। पर वहाँ स्थित क्षेत्र का नाम वास्तव में कुण्डलगिरि ही है।

इस प्रकार कुण्डलपुर नाम के ये चार स्थान प्रसिद्ध हैं। इनमें से दो ही ऐसे स्थान हैं जो विचार कोटि में लिये जा सकते हैं। एक महाराष्ट्र में सतारा जिले के अन्तर्गत कुण्डल स्थान और दूसरा म० प्र० में दमोह जिले के अन्तर्गत कुण्डलपुर स्थान। इन दोनों स्थानों पर जो पर्वत है, उन पर जिन मन्दिर बने हुए हैं। इसलिए दोनों ही स्थान क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध हैं। अब देखना यह है कि इन दोनों स्थानों में से सिद्धक्षेत्र कौन हो सकता है।

१—त्रिलोक प्रज्ञप्ति के प्रमाण से तो यही मालूम पड़ता है कि जो कुण्डलाकार गिरि है, वही सिद्धक्षेत्र हो सकता है, दूसरा नहीं। इस बात को ध्यान में रखकर जब हम विचार करते हैं, तो इससे यही प्रतीत होता है कि दमोह जिले में कुण्डलपुर के अति निकट का पहाड़ ही कुण्डलगिरि सिद्धक्षेत्र होना चाहिए। यह गिरि स्वयं तो कुण्डलाकार है ही, किन्तु इस गिरि से लगकर कुण्डलाकार गिरियों की एक शृंखला चालू हो जाती है। दमोह से कटनी के लिए जो सड़क जाती है, उस पर अवस्थित जो प्रथम कुण्डलाकार गिरि है, वही प्राचीन काल से सिद्धक्षेत्र माना जा रहा है। इसलिए उस गिरि पर स्थित पूरे सिद्धक्षेत्र के दर्शन हो जाते हैं। किन्तु उससे लगकर जुड़ा हुआ जो कुण्डलाकार दूसरा गिरि मिलता है, उसकी रचना भी ऐसी बनी हुई है कि उसके मध्य में स्थित सड़क से चार-पाँच जिन मन्दिरों के दर्शन हो जाते हैं। यही स्थिति तीसरे, चौथे और पाँचवें कुण्डलाकार गिरियों की है। मात्र उन गिरियों पर स्थित जिन मन्दिरों का दर्शन सड़क से उत्तरोत्तर संख्या में कम होता जाता है। इसलिए इन गिरियों की ऐसी प्राकृतिक रचना को देखकर यह निश्चय होता है कि त्रिलोक प्रज्ञप्ति में जिस कुण्डलगिरि सिद्धक्षेत्र का उल्लेख है, वह यही होना चाहिए।

२—इण्डियन एन्टीक्वेरी में नन्दिसंघ की एक पट्टावलि अंकित है। यह जैन सिद्धान्त भास्कर १, ४, पृष्ठ ७९ १९१२ में मुद्रित की गयी है। यह पट्टावलि द्वितीय भद्रबाहु से चालू होती है। इसमें बतलाया गया है कि विक्रम सं० ११४० (१०८३ ई०) में महाचन्द्र या माधवचन्द्र नाम के जो पट्टधर आचार्य हुए हैं, उनका मुख्य स्थान कुण्डलपुर (दमोह जिला) था। इनका पट्टस्थ क्रमांक ५२ है। यह भी एक प्रमाण है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि दमोह जिले में कुण्डलपुर के पास का कुण्डलगिरि ग्यारहवीं सदी में भी इसी रूप में माना जाता रहा है।

यहाँ उल्लिखित पट्टावलि गौतम गणधर से प्रारम्भ होती है फिर भी, इस पट्टावलि को जो द्वितीय भद्रबाहु से प्रारम्भ किया गया है—इसका कारण यह प्रतीत होता है कि द्वितीय भद्रबाहु के काल में ही बलात्कारगण की स्थापना हो गयी थी। इसीलिए इस पट्टावलि को बलात्कारगण की पट्टावलि भी कहा जाता है।

पहिले तो पट्टधर जितने भी आचार्य होते थे, वे सब मुनि ही होते थे। यह परम्परा १३ वीं सदी तक अक्षुण्ण रहती आई। किन्तु बसन्तकीर्ति मुनि के काल में पट्ट पर बैठने वाले मुनियों द्वारा वस्त्र ग्रहण करना प्रारम्भ हो जाने से (भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० ९३) वे भट्टारक शब्द द्वारा अभिहित किये जाने लगे। इस पट्टावलि को केवल भट्टारक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पट्टावलि कहना उपयुक्त नहीं है। अतः १२ वीं शताब्दी में कुण्डलगिरि के जो पट्टधर आचार्य महाचन्द्र हुए हैं, वे भट्टारक न होकर मुनि ही थे, यह स्पष्ट है। इस विवेचन से भी निश्चित हो जाता है कि दमोह जिले के कुण्डलपुर के पास का कुण्डलगिरि ही सिद्धक्षेत्र है। त्रिलोक प्रज्ञप्ति में जिस कुण्डलगिरि का उल्लेख है, वह यही है, अन्य नहीं।

३—कुण्डलगिरि सिद्धक्षेत्र लगभग २५०० वर्ष पुराना है। यहाँ पहाड़ पर एक प्राचीन जिन मन्दिर है। इसे बड़े बाबा का मन्दिर कहते हैं। यहाँ एक कुण्डलपुर ग्राम के परिसर में और दूसरा कुण्डलगिरि पहाड़ के तलभाग में दो मठाकार प्राचीन जिन मन्दिर भी बने हुए हैं। सरकारी पुरातत्व विभाग द्वारा इन मन्दिरों को ब्रह्ममन्दिर कहा गया हैं। ये तीनों छठवीं शताब्दी या उसके पहिले के हैं। इन्हें सूचित करने वाला एक शिलापट्ट दमोह रेलवे स्टेशन पर लगा हुआ है। शिलापट्ट में जो इबारत लिखी गई है, उसका हिन्दी भाव इस प्रकार है :

> जैनियों का तीर्थस्थान कुण्डलपुर दमोह से लगभग २० मील ईशान की तरफ है। यहाँ पर छठवीं सदी के दो प्राचीन ब्रह्ममन्दिर हैं। इनके सिवाय ५८ जैन मन्दिर है। मुख्य मन्दिर में १२ फीट ऊँची पद्मासन महावीर की प्रतिमा है। यहाँ पर हर साल माघ महीने के अन्त में जैनियों का बड़ा भारी मेला लगता है।

इस शिलापट्ट में ५८ मन्दिरों के साथ दो ब्रह्ममन्दिरों का उल्लेख कर उन्हें पुरातत्व विभाग द्वारा छठवीं सदी का स्वीकार किया गया है। इतना अवश्य है कि ५८ जिनमन्दिरों में बड़े बाबा का मुख्य मन्दिर और दो ब्रह्ममन्दिर छठवीं सदी के हैं। शेष जिन मन्दिर अर्वाचीन हैं। इसलिए यहाँ "बड़े बाबा" के मुख्य मन्दिर सहित दो ब्रह्म मन्दिरों का परिचय देना इष्ट प्रतीत होता है।

(क) 'बड़े बाबा' के मुख्य मन्दिर का क्रमांक ११ है। जैसा उसका नाम है, उतना ही वह विशाल है। उसका गर्भालय पाषाण निर्मित है। पहले गर्भालय का प्रवेशद्वार पुराने ढंग का बहुत छोटा था। उसमें सिंहासन पर विराजमान 'बड़े बाबा' की मूर्ति को कई शताब्दियों तथा तीर्थंकर महावीर की मूर्ति कहा जाता रहा। गर्भालय के बाहर दीवाल में जो शिलापट्ट लगाया गया हैं, उसमें भी उसे भगवान् महावीर की मूर्ति कहा गया है। किन्तु वस्तुतः यह भगवान् महावीर की मूर्ति न होकर भगवान् ऋषभदेव की मूर्ति है क्योंकि बड़े बाबा की मूर्ति में दोनों कन्धों से से कुछ नीचे तक बालों की दो-दो लटें लटक रही हैं और आसन के नीचे सिंहासन में भगवान् ऋषभदेव के यक्ष-यक्षी अङ्कित किए गए हैं। मूर्ति पद्मासन मुद्रा में १२ फुट ६ इञ्च ऊँची है और उसकी चौड़ाई ११ फुट ४ इञ्च है। इसके दोनों पार्श्व भागों में ११ फुट १० इञ्च ऊँचे खड्गासन मुद्रा में सात फणी भगवान् पार्श्वनाथ के दो जिनबिम्ब अवस्थित हैं। साथ ही, प्रवेश द्वार को छोड़कर तीनों ओर दीवाल के सहारे प्राचीन जिनबिम्ब स्थापित किये गये हैं। मूल नायक बड़े बाबा अर्थात् भगवान् ऋषभदेव को छोड़कर ये सब जिनबिम्ब दोनों ब्रह्ममन्दिरों से और बर्रट गाँव से लाकर यहाँ विराजमान किये गए हैं। (क्षेत्र के अन्य जिनमन्दिरों में भी प्राचीन प्रतिमायें अवस्थित हैं। वे भी इन्हीं स्थानों से लायी गयी जान पड़ती है।) इस कारण गर्भालय की शोभा अपूर्व और मनोज्ञ बन गयी है। क्षेत्र की शोभा बड़े बाबा से तो है ही, अन्य भी ऐसी अनेक विशेषतायें हैं जिनके कारण यह क्षेत्र अपूर्व महिमा से युक्त प्रतीत होता है। इस कारण प्रत्येक वर्ष वहाँ माघ माह में मेला लगता है। श्री बलभद्र जी 'मध्यप्रदेश के जैनतीर्थ' पृ० १८९ में लिखते है कि 'ध्यान से देखने पर प्रतीत होता है कि बड़े बाबा और पार्श्ववर्ती दोनों पार्श्वनाथ प्रतिमाओं के सिंहासन मूलतः इन प्रतिमाओं के नहीं हैं। बड़े बाबा का सिंहासन दो पाषाण खण्डों को जोड़कर बनाया गया प्रतीत होता है। इसी प्रकार पार्श्वनाथ प्रतिमाओं के आसन किन्हीं खड्गासन प्रतिमाओं के अवशेष जैसे प्रतीत होते हैं। किन्तु यह सही नहीं लगता। बड़े बाबा का पृष्ठभाग, जिस शिला को काटकर यह मूर्ति बनाई गयी है, उससे जुड़ा हुआ प्रतीत होता है और यह हो सकता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि सिंहासन दो पाषाण खण्डों से बनाया गया हो। पर मेरी नम्र राय में उसे उसी स्थान पर निर्मित किया गया है। बारीकी से देखने पर जिस आसन पर बड़े बाबा विराजमान हैं, वह अन्यत्र से नहीं लाया गया है।

यहाँ आने वाले दर्शनार्थियों का कहना है कि सिंहासन में गोलक के लिए एक सुराख बना हुआ था। उस सुराख में रुपया पैसा डालने पर तलभाग में वह कहाँ जाता था, इसका आज तक पता नहीं चला। इस कारण अब यह सुराख बन्द कर दिया गया है। वह स्थान कुछ भाइयों ने हमें भी दिखाया था। इससे तो ऐसा ही प्रतीत होता है कि बड़े बाबा का जिनबिम्ब और सिंहासन आदि जो कुछ भी निर्मित हुआ है, वह वहीं हुआ है। फिर भी हमारी राय है कि पुरातत्वविदों व इन्जीनियरों को बुलाकर इन सब बातों की समीक्षा एक बार अवश्य करा लेना चाहिए ताकि इस सम्बन्ध में होने वाले भ्रम को दूर किया जा सके।

(ख) प्रथम ब्रह्म मन्दिर कुण्डलगिरि की तलहटी में स्थित है। मैं अनेक भाइयों के साथ उसके अभ्यन्तर भाग का अवलोकन करने के लिए वहाँ गया था। उनमें समाज के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० जगन्मोहनलाल जी शास्त्री भी थे। किन्तु मन्दिर के द्वार पर कुछ भाइयों ने ताला लगा रखा है। इसलिये उसके भीतर प्रवेश करके उसके भीतर क्या है, यह हम नहीं देख सके। फिर भी, उन भाइयों का कहना था कि मन्दिर के भीतर जो देवी की मूर्ति है, वह पद्मावती देवी की ही है।

(ग) दूसरे ब्रह्ममन्दिर को रुक्मिणी मठ भी कहा जाता है। वह भी छठीं सदी का है। यह कुण्डलपुर ग्राम के परिसर में अवस्थित है। इसे रुक्मिणी मठ क्यों कहा जाता है, इसके पीछे एक इतिहास है। यह ब्रह्ममन्दिर जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। वहाँ पहले जो जिनबिम्ब विराजमान थे, उन्हें यहाँ से ले जाकर बड़े बाबा के मन्दिर में स्थापित कर दिया गया है। इस मन्दिर के मध्य भाग में ३ हाथ ४ अंगुल चौड़ा शिलापट्ट है। उसमें अंकित आम्रवृक्ष के मूल में भगवान् नेमिनाथ सहित यक्ष-यक्षिणी की एक मूर्ति प्रतिष्ठित है। यक्षिणी की गोदी में बालक है और दूसरा बालक आम्रवृक्ष पर चढ़ता हुआ दिखाया गया है। इस ब्रह्म मन्दिर में गिरदल रखा हुआ है। उसमें भी जैन मूर्तियाँ अंकित हैं। बड़े बाबा का मन्दिर तो समाज के अधिकार में होने से उसकी भले प्रकार देख-रेख होती रहती है। परन्तु इन दोनों ब्रह्म मन्दिरों की नहीं होती। यद्यपि कुण्डलगिरि की तलहटी में जो ब्रह्ममन्दिर है, उस पर अन्य भाइयों ने कब्जा अवश्य कर रखा है, परन्तु दूसरे ब्रह्ममन्दिर के समान इसकी भी समुचित देखरेख नहीं हो पाती। न तो समाज का इस ओर ध्यान है और न पुरातत्व विभाग का ही।

(घ) बड़े बाबा के मन्दिर का जो गर्भालय है, उससे लग कर जो मण्डप है, उसके मध्य में एक चबूतरा बना हुआ है। उस पर मध्य में पुराने चरण-चिह्न विराजमान हैं। वे कितने प्राचीन हैं, यह कहना कठिन है। पर जिस पाषाण खण्ड को काटकर उन्हें बनाया गया है, उसे देखते हुए ये चरण-चिह्न हजार-आठ सौ वर्ष पुराने नियम से होने चाहिये, ऐसा प्रतीत होता है। सम्भव है कि यहाँ पर सन् ११४० में महाचन्द्र नाम के जो पट्टधर आचार्य हो गये हैं, उनके अनुरोध पर ही, यह निश्चय होने से कि यही वह कुण्डलगिरि है जहाँ से श्रीधर स्वामी मोक्ष गये हैं, इन चरण चिह्नों की स्थापना की गयी हो। उन पर 'कुण्डलगिरौ श्रीधर स्वामी' यह लिखा होने से भी यही प्रतीत होता है कि उन्होंने ही श्रीधर स्वामी के इन चरण चिन्हों की स्थापना कराई होगी। श्री पं० बलभद्रजी ने 'मध्यप्रदेश के दिगम्बर जैन तीर्थ' के पृ० १९३ पर जो इन चरण चिह्नों को १२-१३वीं शताब्दी का सूचित किया है, उससे भी इस बात की सत्यता प्रमाणित होती है।

(च) दोनों ब्रह्म मन्दिरों से जो प्रतिमायें लाई गई थीं, उनमें से बहुत-सी प्रतिमायें तो गर्भालय में ही स्थापित कर दी गई हैं। उनके आकार और निर्माण शैली को देखते हुए इस कथन को स्वीकार कर लेने में हमें कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती कि ये सब मूर्तियाँ कम से कम उतनी प्राचीन प्रतीत होत हैं जितने प्राचीन ब्रह्ममन्दिर हैं। वे सब मूर्तियाँ पद्मासन हैं, संख्या में १४ हैं और प्रत्येक में पुष्पवर्णी देव और चरमवाहक हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(छ) इनके सिवाय, बर्रट आदि स्थानों से लाई गई मूर्तियाँ अन्य मन्दिरों में स्थापित की गई हैं। उनमें खड्गासन और पद्मासन—दोनों प्रकार की प्रतिमायें हैं। उदाहरणार्थ, ८, ९, ११, १३, १४, १६, १९, २०, २९, ४० और ५० संख्यांक जिन मन्दिरों में देशी पाषाण निर्मित प्रतिमायें विराजमान हैं। इस प्रकार ३, ५, और ६ संख्यक मन्दिरों में देशी पाषाण निर्मित चरण चिह्न हैं।

(ज) इन सब प्रमाणों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस क्षेत्र का निर्माण छठवीं सदी से पहले ही हो गया था। यह ठीक है कि यहाँ के मन्दिरों में बर्रट से देशी पाषाण निर्मित बहुत-सी मूर्तियां लाकर प्रतिष्ठित की गयीं हैं, परन्तु इससे क्षेत्र की प्राचीनता में कोई बाधा नहीं पड़ती। इनमें बहुत सी मूर्तियाँ अङ्ग-भङ्ग भी हैं। साथ ही, बड़े मन्दिर की परिक्रमा के पीछे खुले भाग में चबूतरे पर दीवाल से लग कर बहुत-सी मूर्तियाँ यहाँ वहाँ से लाकर रखी हुई हैं। इससे भी उक्त तथ्य की पुष्टि होती है।

कोठिया जी के मत पर विचार

डॉ० दरबारीलाल कोठिया, न्यायाचार्य ने 'अनेकान्त' वर्ष ८, किरण ३, मार्च १९४६ में 'कौन-सा कुण्डलगिरि सिद्धक्षेत्र है" शीर्षक से एक लेख लिखा था। उसे पढ़ कर पत्र द्वारा मैंने उन्हें ऐसे लेख न लिखने का आग्रह किया था। उस समय जहां तक मुझे याद है, उन्होंने मेरी यह बात स्वीकार भी कर ली थी। किन्तु पुनः कुछ परिवर्तन के साथ उसी लेख को जब मैंने उनके अभिनन्दन ग्रन्थ में देखा, तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। इससे ही मुझे इस विषय पर सांगोपांग विचार करने की प्रेरणा मिली।

इस लेख में उन्होंने बताया है कि सन् १९४६ के पूर्व विद्वत्परिषद के कटनी अधिवेशन में 'क्या दमोह जिले का कुण्डलगिरि सिद्धक्षेत्र है' इसका निर्णय करने के लिए तीन विद्वानों की एक उपसमिति बनाई गई थीं। उसी आधार पर अपने अनुसन्धान, विचार और उसके निष्कर्ष को विद्वानों के सामने रखने के लिए डॉ० साहब ने उस समय वह लेख लिखा था। उनके अभिनन्दन ग्रन्थ में प्रकाशित उनका एतद्विषयक दूसरा लेख भी उन्होंने इस विषय के 'अनुसन्धेय' भाव से लिखा है।

त्रिलोक प्रज्ञप्ति के अनुसार अन्तिम अननुबद्ध केवली श्रीधर स्वामी कुण्डलगिरि से मोक्ष गये हैं। आचार्य पादपूज्य (पूज्यपाद) ने भी स्वलिखित निर्वाण-भक्ति में कुण्डलगिरि को निर्वाण क्षेत्र स्वीकार किया है। परन्तु यह कुण्डलगिरि किस केवली को निर्वाणभूमि है, यह कुछ भी नहीं लिखा है। वही स्थिति 'क्रियाकलाप' में संगृहीत प्राकृत निर्वाण भक्ति की भी है, इस प्रकार इन तीन उल्लेखों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि कुण्डलगिरि सिद्धक्षेत्र है। अब विचार यह करना है कि वह कुण्डलगिरि सिद्धक्षेत्र किस प्रदेश में अवस्थित है। आचार्य पूज्यपाद ने अपने स्वलिखित संस्कृत निर्वाण भक्ति के ९ संख्यक श्लोक में द्रोणीगिरि के अनन्तर कुण्डलगिरि का उल्लेख करके बाद में मुक्तागिरि का उल्लेख किया है। साथ ही, इसमें राजगृही के पाँच पहाड़ों में से वैभारगिरि, ऋषिगिरि, विपुलगिरि और वलाहकगिरि का भी उल्लेख करते हुए इन निर्वाण भूमि स्वीकार किया है। इस उल्लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य पूज्यपाद की दृष्टि में राजगृही के पाँच पहाड़ों में से चार पहाड़ ही सिद्धक्षेत्र हैं, पाण्डुगिरि सिद्धक्षेत्र नहीं है। उन्होंने अपने दूसरे लेख में जो यह लिखा है कि 'पूज्यपाद के उल्लेख से ज्ञात होता है कि उनके समय में पाण्डुगिरि, जो वृत्त (गोल) है, कुण्डलगिरि भी कहलाता था।' सो इस सम्बन्ध में हमारा इतना कहना पर्याप्त है कि इसकी पुष्टि में उन्हें कोई प्रमाण देना चाहिये था। सभी आचार्यों ने पाण्डुगिरि को ही लिखा है। उन्होंने भी वही किया है। इससे यह कहाँ सिद्ध होता है कि उनके समय पाण्डुगिरि कुण्डलगिरि भी कहलाता था। प्रत्युत् उससे यही सिद्ध होता है कि उनकी दृष्टि में ये दो स्वतन्त्र पहाड़ थे। चार पहाड़ों के सिद्धक्षेत्र होने का उल्लेख आ० पूज्यपाद रचित संस्कृतनिर्वाणभक्ति में भी है। यह उल्लेख न तो त्रिलोक प्रज्ञप्ति में ही दृष्टिगोचर होता है और न प्राकृत निर्वाण भक्ति में ही। किन्तु कोठिया जी का विचार है कि जब आचार्य पूज्यपाद ने राजगृह के पाँच पहाड़ों में से चार को सिद्धक्षेत्र मानी है, तो पाण्डुगिरि भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धक्षेत्र होना चाहिये। इसे सिद्धक्षेत्र सिद्ध करने के लिये उन्होंने जो तर्क प्रणाली अपनायी है, वह अवश्य ही विचारणीय हो जाती है। उन्होंने त्रिलोक प्रज्ञप्ति, हरिवंश पुराण और धवला-जयधवला के प्रमाण देकर पाँच पहाड़ों का विशेष वर्णन प्रस्तुत किया है। त्रिलोक प्रज्ञप्ति के अनुसार ऋषिगिरि, वैभारगिरि, विपुलगिरि, छिन्नगिरि और पाण्डुगिरि ये पाँच पहाड़ों के नाम हैं। धवला व जयधवला के अनुसार भी पाँच पहाड़ों के नाम त्रिलोक प्रज्ञप्ति के अनुरूप हैं। मात्र हरिवंशपुराण के अनुसार, छिन्नगिरि के स्थान में बलाहकगिरि कहा गया है। शेष चार पहाड़ों के नाम वही है जो त्रिलोक प्रज्ञप्ति में स्वीकार किये गये हैं। यहाँ इतना विशेष जानना कि त्रिलोक प्रज्ञप्ति में पाण्डुगिरि का कोई आकार नही दिया गया है, किन्तु शेष उल्लेखों में उसे गोल लिखा है। एक बात यहाँ ध्यान देने योग्य है कि इन सभी ग्रन्थों में जो ये पाँच पहाड़ों के नाम आये हैं, वे उनका परिचय कराने के अभिप्राय से ही आये हैं। वे सिद्ध क्षेत्र हैं, इस अभिप्राय से उनका उल्लेख उन ग्रन्थों में नहीं किया गया है। इसलिए उन ग्रन्थों का आधार देकर पाण्डुगिरि को सिद्धक्षेत्र ठहराना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता।

इसके विपर्यास में, त्रिलोक प्रज्ञप्ति में जहाँ कुण्डलगिरि को श्रीधर स्वामी का निर्वाण क्षेत्र कहा गया है, वह प्रकरण ही दूसरा है। वहाँ यह बतलाया गया है कि भगवान् महावीर स्वामी के मोक्ष जाने के बाद कितने केवली मोक्ष गये है। यहाँ इस भारत भूमि में कितने सिद्धक्षेत्र हैं और वे कहाँ-कहाँ हैं, यह नहीं बतलाया गया है। मात्र प्रसङ्गवश कुण्डलगिरि को पाण्डुगिरि सिद्ध करके उसे सिद्धक्षेत्र ठहराना उचित प्रतीत नहीं होता। इसे दृष्टिओझल करके कोठिया जी प्रथम लेख में लिखते हैं कि—यहाँ यह ध्यान देने योग्य हैं कि बलाहक को छिन्न भी कहा जाता है। अतः एक पर्वत के ये दो नाम हैं और इनका उल्लेख ग्रन्थकारों ने दोनों नामों से किया है। जिन्होंने बलाहक नाम दिया है, उन्होंने छिन्न नाम नहीं दिया और जिन्होंने छिन्न नाम दिया है, उन्होंने बलाहक नाम नहीं दिया और अवस्थान सभी ने एक-सा बतलाया तथा पंच पहाड़ों के साथ उसकी गिनती की है। अतः बलाहक और छिन्न दोनों पर्यायवाची नाम हैं। इसी तरह 'ऋष्याद्रिक और ऋषिगिरि—ये भी पर्याय नाम हैं।'

"अब इधर ध्यान दें कि जिन वीरसेन और जिनसेन स्वामी ने पाण्डुगिरि का नामोल्लेख किया है, उन्होंने फिर कुण्डलगिरि का नामोल्लेख नहीं किया। इसी प्रकार पूज्यपाद ने जहाँ सभी निर्वाण क्षेत्रों को गिनाते हुये कुण्डलगिरि का नाम दिया है, फिर उन्होंने पाण्डुगिरि का उल्लेख नहीं किया। हाँ, यतिवृषभ ने अवश्य पाण्डुगिरि और कुण्डलगिरि दोनों नामों का उल्लेख किया है। लेकिन दो विभिन्न स्थानों में किया है। पाण्डुगिरि का तो पाँच पहाड़ों के साथ प्रथम अधिकार में और कुण्डलगिरि का चौथे अधिकार में किया है। अतएव पाण्डुगिरि-भिन्न कुण्डलगिरि अभीष्ट हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि यतिवृषभ ने पूज्यपाद की निर्वाणभक्ति देखी होगी और उसमें पूज्यपाद के द्वारा पाण्डुगिरि के लिये नामांतर रूप में प्रयुक्त कुण्डलगिरि को पाकर इन्होंने कुण्डलगिरि का भी नामोल्लेख किया है। प्रतीत होता है कि पूज्यपाद के समय में पाण्डुगिरि को कुण्डलगिरि भी कहा जाता था। अतएव उन्होंने पाण्डुगिरि के स्थान में कुण्डलगिरि नाम दिया है।"

इस उल्लेख से ऐसा लगता है कि पंच पहाड़ों में सभी पहाड़ सिद्धक्षेत्र हैं। ऐसा मानकर ही कोठिया जी कुण्डलगिरि को पाण्डुगिरि समझकर उसे (पाण्डुगिरि को) सिद्धक्षेत्र सिद्ध कर रहे हैं। अपने इस कथन की पुष्टि में जैसे छिन्नगिरि का दूसरा नाम बलाहकगिरि है, वैसे ही पाण्डुगिरि का दूसरा नाम कुण्डलगिरि कुण्डलाकार है और पाण्डुगिरि गोल है, यह बता करके भी दोनों को एक लिखा है। किन्तु उनके ये तर्क तभी संगत माने जा सकते हैं जब अन्य किसी ग्रन्थ में वे पाण्डुगिरि का पर्याय नाम कुण्डलगिरि बता सकें। रही कुण्डलाकार और गोल आकार की बात, सो पाण्डुगिरि गोल होकर ठोस है और कुण्डलगिरि ऐसा ठोस नहीं है। बलाहक (छिन्न) पहाड़ को अवश्य ही धनुषाकार बतलाया गया है। यदि पाण्डुगिरि भी धनुषाकार होता, तो उसे गोल नहीं लिखा जाता। इसलिए जहाँ पाण्डुगिरि को कुण्डलगिरि ठहराना तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता, वहाँ पाण्डुगिरि को धनुषाकार ठहराना भी तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए प्रकृत में यही समझना चाहिये कि कुण्डलगिरि ही सिद्धक्षेत्र है, पाण्डुगिरि नहीं। भले ही उसकी गणना राजगृहों के पंच पहाड़ों में की गई हो।

आगे परिशिष्ट लिखकर कोठियाजी लिखते हैं कि 'जब हम दमोह के पार्श्ववर्ती कुण्डलगिरि या कुण्डलपुर की ऐतिहासिकता पर विचार करते हैं, तो उसके कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं होते। केवल विक्रम की १७वीं शताब्दी का उत्कीर्ण हुआ शिलालेख प्राप्त होता है जिसे महाराज छात्रसाल ने वहाँ चैत्यालय का जीर्णोद्धार कराते समय खुदवाया था। कहा जाता है कि कुण्डलपुर में भट्टारक की गद्दी थी। इस गद्दी पर छत्रसाल के समकाल में एक प्रभावशाली मन्त्रविद्या के ज्ञाता भट्टारक तब प्रतिष्ठित थे। तब उनके प्रभाव एवं आशीर्वाद से छत्रसाल ने एक बड़ी भारी यवन सेना पर काबू करके उस पर विजय पाई थी। इससे प्रभावित होकर छत्रसाल ने कुण्डलपुर का जीर्णोद्धार कराया था, आदि।'

उनके इस मत को पढ़कर ऐसा लगता है कि वे एक तो कभी कुण्डलपुर गये ही नहीं और गये भी हैं तो उन्होंने वहाँ का बारीकी से अध्ययन नहीं किया है। वे यह तो स्वीकार करते हैं कि छत्रसाल के काल में वहाँ एक चैत्यालय था और वह जीर्ण हो गया था। फिर भी, वे कुण्डलगिरि की ऐतिहासिकता को स्वीकार नहीं करते। जबकि पुरातत्व विभाग कुण्डलगिरि की ऐतिहासिकता को आठवीं शताब्दी तक का स्वीकार करता है। उसके प्रमाण रूप में कतिपय चिह्न आज भी वहाँ पाये जाते हैं। और सबसे बड़ा प्रमाण तो भगवान् ऋषभदेव (बड़े बाबा) की मूर्ति ही है। उसे १८वीं सदी से १०० वर्ष पुरानी बताना किसी स्थान के इतिहास के साथ न्याय करना नहीं कहा जायगा।

जिन लोगों का क्षेत्र से कोई सम्बन्ध नहीं, जो जैन धर्म के उपासक भी नहीं, वे पुरातत्व का भले प्रकार अनुसन्धान करके क्षेत्र को छठीं शताब्दी का लिखें और उसके प्रमाण स्वरूप दमोह स्टेशन पर एक शिलापट्ट द्वारा उसकी प्रसिद्धि भी करें और हम हैं कि उसका सम्यक् प्रकार से अवलोकन तो करें नहीं, वहाँ पाये जानेवाले प्राचीन अवशेषों को बुद्धिगम्य करें नहीं, फिर भी उसकी प्राचीनता को लेखों द्वारा सन्देह का विषय बनायें, वह प्रवृत्ति अच्छी नहीं कही जा सकती।

कोठियाजी ने अपने दोनों लेखों में प्रसंगतः दो विषयों का उल्लेख किया है। एक तो निर्वाणकाण्ड के विषय में चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है कि 'प्रभाचन्द्र (११ वीं शती) और श्रुतसागर (१५वीं-१६वीं शती) के मध्य में बने प्राकृत निर्वाणकाण्ड के आधार से बने, भैया भगवतीदास (सं० १७४१) के भाषा निर्वाणकाण्ड में जिन सिद्ध व अतिशय क्षेत्रों की परिगणना की गई है, उसमें भी कुण्डलपुर को सिद्धक्षेत्र या अतिशयक्षेत्र के रूप में परिगणित नहीं किया गया। इससे यही प्रतीत होता है कि यह सिद्धक्षेत्र तो नहीं है, अतिशय क्षेत्र भी १५ वीं-१६ वीं शताब्दी के बाद प्रसिद्ध होना चाहिए।' यह कोठियाजी का वक्तव्य है। इससे मालूम पड़ता है कि उन्होंने निर्वाणकाण्ड के दोनों पाठों का सम्यक् अवलोकन नहीं किया है। निर्वाणकाण्ड का एक पाठ **ज्ञानपीठ पूजाञ्जलि** में छपा है। उसमें कुल २१ गाथाएँ हैं। दूसरा पाठ **क्रियाकलाप** में छपा है। उसमें पूर्वोक्त २१ गाथायें तो हैं ही, उनके सिवाय ८ गाथायें और हैं इसलिए कोठियाजी का यह लिखना कि निर्वाणकांड में कुण्डलगिरि का किसी भी रूप में उल्लेख नहीं है, ठीक प्रतीत नहीं होता। निर्वाणकाण्ड का जो दूसरा पाठ मिलता है, उसकी २६ वीं गाथा में 'णिवणकुण्डली वन्दे' इस गाथा के चौथे पाद (चरण) द्वारा निर्वाण क्षेत्र कुण्डलगिरि की वन्दना की गई है। यहाँ 'णिवण' पद निर्वाण अर्थ को सूचित करता है और 'कुण्डली' पद कुण्डलगिरि अर्थ को सूचित करता है। 'णिवणं पद में आइमजपन्तवण्णसरलोवो' इस नियम के अनुसार 'ब' व्यंजन और 'आ' का लोप होकर णिवण पद बना है जो प्राकृत के नियमानुसार ठीक है। रही भैया भगवतीदास के भाषा निर्वाणकाण्ड की बात, सो उन्हें इक्कीस गाथा वाला निर्वाण काण्ड मिला होगा। इसलिए यदि उन्होंने भाषा निर्वाणकाण्ड में किसी भी रूप के कुण्डलगिरि का उल्लेख नहीं किया, तो इससे यह कहाँ सिद्ध होता है कि वह निर्वाण क्षेत्र नहीं है। आप प्राकृत या भाषा निर्वाणकाण्ड पढ़िये, उनमें यदि ऊपर वर्णित राजगृहों के पाँच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहाड़ों में से वैभार आदि चार पहाड़ों को सिद्धक्षेत्र रूप में स्वीकार नहीं किया गया है, तो क्या यह माना जा सकता है कि उक्त चार पहाड़ सिद्धक्षेत्र नहीं ही हैं। वस्तुतः सिद्धक्षेत्रों या अतिशय क्षेत्रों के निर्णय करने का यह मार्ग नहीं है। किन्तु इस सम्बन्ध में यह मान कर चला जाता है कि जिन आचार्य को जितने सिद्धक्षेत्रों या अतिशय क्षेत्रों के नाम ज्ञात हुए, उन्होंने उसने सिद्धक्षेत्रों और अतिशय क्षेत्रों का संकलन कर दिया।

दूसरे सोनागिरि के विषय में चर्चा करते हुए उन्होंने अपने प्रथम लेख के अन्त में लिखा है कि 'अतः मेरे विचार और खोज से कुण्डलगिरि को सिद्धक्षेत्र घोषित करने या कराने की चेष्टा की जायगी, तो एक अनिवार्य भ्रान्त परम्परा इसी प्रकार की चल उठेगी जैसी कि वर्तमान के रेसिंदीगिर और सोनागिर की चल पड़ी है।' उसी में हेरफेर करके उनके दूसरे लेख का निष्कर्ष भी यही है।

इन दो उल्लेखों से ऐसा लगता है कि पहले तो वे रेसिंदीगिर, सोनागिर और कुण्डलगिरि इन तीनों को सिद्धक्षेत्र नहीं मानते रहे और बाद में उन्होंने रेसिंदीगिर और सोनागिर को तो सिद्धक्षेत्र मान लिया है। मात्र कुण्डलगिरि को सिद्धक्षेत्र मानने में उन्हें विवाद है। पर किस कारण से उन्होंने सिंदीगिर और सोनागिर को सिद्ध क्षेत्र मान लिया है, इस सम्बन्ध में वे मौन हैं। मात्र कुण्डलगिरि को सिद्धक्षेत्र न मानने में उन्होंने जो तर्क दिये हैं, वे कितने प्रमाणहीन हैं, यह हम पहले ही स्पष्ट कर आये हैं। अतः हमारे लेख में दिये गये तथ्यों के आधार पर यही मानना शेष रह जाता है कि सब ओर से विचार करने पर कुण्डलगिरि भी सिद्धक्षेत्र सिद्ध होता है।

अब केवल बड़े बाबा के गर्भालय के बाहर दीवाल पर एक शिलापट्ट में जो प्रशस्ति उत्कीर्ण है, उसे अविकल देकर उससे जो तथ्य सामने आते हैं, उन पर प्रकाश डाल देना क्रम प्राप्त है।

जिसे भट्टारक सम्प्रदाय ग्रन्थ में जेहरट शाखा कहा गया है, वह वास्तव में जेहुरटशाखा न होकर चन्देरी शाखा है। यह शाखा भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति से प्रारम्भ होती है। इसके छटे पट्टधर भट्टारक ललितकीर्ति थे। उसी पट्ट पर बैठने वाले ७ वें भट्टारक धर्मकीर्ति और ८ वें भट्टारक पद्मकीर्ति हुए हैं। धर्मकीर्ति ने ही श्रीरामदेव पुराण की रचना की है। यह पट्ट मूलसंघ कुन्दकुन्दाम्नाय के अन्तर्गत सरस्वतीगच्छ बलात्कारगण के आम्नाय को मानने वाला था। चाँदखेड़ी के एक शिलालेख में इसे परवार भट्टारक पट्ट भी कहा गया है। श्री भट्टारक पद्मकीर्ति के समकक्ष दूसरे भट्टारक का नाम चन्द्रकीर्ति था। सम्भवतः ये पट्टधर भट्टारक थे। चन्देरी पट्ट के १० वें भट्टारक श्री सुरेन्द्रकीर्ति थे। उन्होंने ही अपने गुरु श्री सुरेन्द्रकीर्ति के उपदेश से भिक्षाटन द्वारा बड़े बाबा के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराने का विचार किया था। बाद में उनकी आयु पूर्ण हो जाने पर जो वेदी आदि का कार्य थोड़ा न्यून रह गया था, उसे नमिसागर ब्रह्मचारी ने पूरा कराया।

जिस समय यह कार्य सम्पन्न हो रहा था, बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध राजा छत्रसाल वहीं रह रहे थे। मुसलमानों के आक्रमण से त्रस्त-होकर वहाँ उन्हें बहुत काल तक रहना पड़ा। इससे प्रभावित होकर उन्होंने कुण्डलगिरि के तलभाग में एक विशाल सरोवर का निर्माण कराया और श्री मन्दिर के लिए अनेक उपकरण भेंट किये। उनमें दो मन का पीतल का घण्टा भी था।

बड़े बाबा के मन्दिर के बाहर दीवाल में लगे हुए विशाल पट्ट का यह सामान्य परिचय है। इससे इतना ही ज्ञात होता है कि वहाँ कुण्डलगिरि के ऊपर एक प्राचीन जिनमन्दिर था, उसमें जो बड़े बाबा की मूर्ति विराजमान थी, उसे ब्रह्मचारी नमिसागर ने भगवान् महावीर की मूर्ति कहा है। यह जिनमन्दिर और दोनों ब्रह्ममन्दिर, इस लेख से मालूम पड़ता है कि उसी काल से प्रसिद्धि में आये हैं और उसके फलस्वरूप वहाँ जनता का आना जाना प्रारम्भ हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org